

माननीय एम.एम.कुमार और रितु बाहरी जे.जे., से पहले

अनिल दलाल,-याचिकाकर्ता

बनाम

केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, चंडीगढ़ बेंच, चंडीगढ़ और अन्य,-प्रतिवादी

सीडब्ल्यूपी संख्या 15066/सीएटी 2003

25 अक्टूबर, 2010

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965—रिसिस। 10 (2) और 14 (8)(ए) - जल्दबाजी में बिल पारित करने के लिए एक लेखा परीक्षक के खिलाफ आरोप - सेवा से निष्कासन - याचिकाकर्ता के खिलाफ साजिश का कोई आरोप नहीं लगाया गया, लेकिन जांच अधिकारी उस प्रभाव के निष्कर्ष को रिकॉर्ड कर रहा है - क्या साजिश का कोई निष्कर्ष नहीं निकला था तब अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने अत्यधिक दंड नहीं दिया होगा - इसी तरह स्थित व्यक्तियों ने बिलों की जांच की और उन्हें पारित किया, उनके साथ समान व्यवहार नहीं किया गया - गबन या दुरुपयोग के संबंध में कोई आरोप नहीं - सजा की मात्रा पर हस्तक्षेप जरूरी है - निष्कासन के आदेश को रद्द कर दिया गया और अनुशासनात्मक प्राधिकरण को याचिकाकर्ता को दी गई सजा पुनर्विचार करने का निर्देश दिया गया

निर्णय, याचिकाकर्ता के खिलाफ साजिश का कोई आरोप नहीं लगाया गया था लेकिन जांच अधिकारी ने इस आशय का निष्कर्ष दर्ज किया है। यह तथ्यात्मक रूप से सही है कि जांच अधिकारी ने आरोपों के दायरे से बाहर यात्रा की है। यदि उपरोक्त प्रकृति का कोई निष्कर्ष नहीं निकला होता तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की अत्यधिक सजा नहीं दी होती।

(पैरा 14 एवं 15)

निर्णय, श्री आर.के. कौल जैसे व्यक्ति, जिन्होंने बिलों की जांच की और श्री के.एस. बिल पारित करने वाले लेखा अधिकारी रस्तोगी के साथ समान व्यवहार नहीं किया गया, जबकि वे कहीं अधिक अनुभवी थे और अधिक जिम्मेदार पदों पर थे। उन्हें बिलों की जांच करने और भुगतान की अंतिम मंजूरी देने का कर्तव्य सौंपा गया था। इसलिए, उपरोक्त अधिकारियों के साथ साजिश की थ्योरी को तथ्यों पर आधारित नहीं किया जा सकता है। किसी भी मामले में, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निष्कासन की अत्यधिक सजा अनुचित होगी।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता दिनेश कुमार

प्रतिवादियों की ओर से वकील संजय गोयल।

एम.एम. कुमार, जे.

(1) संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर यह याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, चंडीगढ़ बेंच, चंडीगढ़ (संक्षिप्तता के लिए, 'न्यायाधिकरण') द्वारा पारित 12 अगस्त, 2002 के आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसने रक्षा लेखा नियंत्रक (पश्चिमी कमान), चंडीगढ़ द्वारा पारित दिनांक 19 अप्रैल 1999 (ए-2) को हटाने के आदेश को बरकरार रखा।

(2) ट्रिब्यूनल के आदेश में सामने आए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता 3 दिसंबर 1987 से 15 मार्च 1991 की अवधि के दौरान रक्षा लेखा नियंत्रक (पश्चिमी कमान), चंडीगढ़ के स्टोर अनुबंध अनुभाग में लेखा परीक्षक के रूप में कार्यरत

था। उन पर एक आपराधिक अपराध का आरोप लगाया गया और 19 जून, 1992 को हिरासत में लिया गया। 6 जुलाई, 1992 के एक आदेश के अनुसार, उन्हें 19 जून, 1992 से निलंबित कर दिया गया था, यानी वह तारीख जब उन्हें हिरासत में लिया गया था। इसे केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 (संक्षिप्तता के लिए, 'सीसीएस नियम') के नियम 10(2) के संदर्भ में माना गया निलंबन माना गया था। इसके बाद, 23 जुलाई, 1992 को सीसीएस नियमों के नियम 14 के तहत उन्हें आरोप पत्र जारी किया गया (ए-एल 1)। आरोपों की धारा के बयान के अनुसार याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप की धारा इस प्रकार है:

“श्री अनिल दलाल, ए/सी नंबर 8323026, 3 दिसंबर, 1987 से 15 मार्च, 1991 की अवधि के दौरान सीडीए, पश्चिमी कमान, चंडीगढ़ (स्टोर कॉन्ट्रैक्ट सेक.) के कार्यालय में लेखा परीक्षक के रूप में कार्यरत थे।

वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन में जनता के हितों की रक्षा के लिए बुनियादी ऑडिट जांच करने और पर्याप्त सावधानी बरतने में विफल रहे।

इस प्रकार उन्होंने अनावश्यक रूप से जल्दबाजी में लापरवाही से भुगतान करके, स्पष्ट रूप से नकली स्थानीय खरीद बिलों का भुगतान करके लगभग 29.20 लाख रुपये (केवल उनतीस लाख बीस हजार) के सार्वजनिक धन के गबन की सुविधा प्रदान की, जिसमें प्रथम दृष्टया नकली दस्तावेज शामिल थे, जो मुख्यालय द्वारा HQrs 627(1) AD Bde and 49 AD Regt. प्रस्तुत किए गए थे। इस प्रकार अधिकारी ने ईमानदारी की कमी, कर्तव्य के प्रति समर्पण की कमी और एक सरकारी कर्मचारी के लिए अनुचित आचरण का प्रदर्शन किया, जिससे सीसीएस आचरण नियम 1964 के नियम 3(1)(i)(ii) और (iii) के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ।

(3) आरोप पत्र के साथ कदाचार के आरोप का विस्तृत विवरण, दस्तावेजों की सूची, गवाहों की सूची और अतिरिक्त बिलों की सूची भी संलग्न की गई थी।

(4) उनके उत्तर आदि प्राप्त होने के बाद, उत्तरदाताओं ने उनके खिलाफ विभागीय जांच शुरू करने का फैसला किया। जांच के दौरान, याचिकाकर्ता ने सीसीएस नियमों के नियम 14(8)(ए) के संदर्भ में एक कानूनी व्यवसायी को नियुक्त करने की अनुमति मांगने के लिए एक आवेदन दिया क्योंकि विभाग में कोई भी उसे सहायता देने के लिए तैयार नहीं था। 26 अगस्त, 1993 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उक्त आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि मामले में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी सीसीएस नियमों के नियम 14(8)(ए) की आवश्यकता के अनुसार कानूनी व्यवसायी नहीं था। 3 अप्रैल, 1998 को जांच अधिकारी ने इस आशय की अपनी रिपोर्ट दी कि याचिकाकर्ता ने जांच के दौरान स्वयं स्वीकारोक्ति की और समर्थन स्वीकार किया, जिससे साबित हुआ कि वह जानबूझकर अनियमितताएं करने के लिए दोषी और जिम्मेदार था। जांच अधिकारी द्वारा यह विशेष रूप से देखा गया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी लिखावट में कुछ दस्तावेज लिखने की बात भी स्वीकार की है, जिससे यह भी साबित होता है कि वह अन्य लोगों के साथ साजिश में शामिल था। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप साबित हुआ।

(5) 3 अप्रैल 1998 को, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को उसके द्वारा कोई भी अभ्यावेदन देने के लिए जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदान की, जिसे 15 दिनों के भीतर लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाना था (ए-1)। 30 अप्रैल, 1998 को याचिकाकर्ता ने जांच रिपोर्ट के खिलाफ विभिन्न मुद्दे उठाते हुए अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को 20 अप्रैल, 1999 से सेवा से हटाने का आदेश पारित किया। 19 अप्रैल, 1999 के आक्षेपित आदेश का प्रासंगिक भाग (ए-2) इस प्रकार है:

“6. रिकॉर्ड पर दस्तावेजी साक्ष्य, जांच अधिकारी के निष्कर्ष, श्री दलाल द्वारा अपने प्रतिनिधित्व में उठाए गए बिंदुओं और परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करते हुए, अधोहस्ताक्षरी ने पाया कि श्री अनिल दलाल न केवल मौलिक

ऑडिट जांच करने और सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए पर्याप्त सावधानी बरतने में विफल रहे। इसके परिणामस्वरूप लापरवाही से अनावश्यक जल्दबाजी में भुगतान किया गया, स्पष्ट रूप से फर्जी स्थानीय खरीद बिलों का भुगतान किया गया, लेकिन उन्होंने अनधिकृत तरीके से अपनी लिखावट में कुछ दस्तावेज भी तैयार किए, जिससे दूसरों के साथ साजिश रची गई। और चूँकि ऐसा आचरण उन्हें श्री दलाल को "सेवा से हटाने" के लिए अयोग्य बना देता है।

7. अब, इसलिए, अधोहस्ताक्षरी उक्त श्री अनिल दलाल, लेखा परीक्षक, खाता संख्या 8323026 पर 20 अप्रैल, 1999 से 'सेवा से निष्कासन' का जुर्माना लगाता है।"

(6) याचिकाकर्ता ने 19 अप्रैल, 1999 के आदेश के खिलाफ एक वैधानिक विभागीय अपील दायर की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने 14 सितंबर, 1999 के आदेश (ए-4) के तहत खारिज कर दिया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए ट्रिब्यूनल के समक्ष O.A.No.92/CH/2000 दायर किया। ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता द्वारा दी गई दलीलों को भी खारिज कर दिया और मूल आवेदन को खारिज कर दिया, - 12 अगस्त, 2002 के आदेश के तहत। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश का प्रासंगिक उद्धरण निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"आवेदक के विद्वान वकील ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों का जिक्र करते हुए हमारा ध्यान विशेष रूप से निष्कर्षों के उस हिस्से की ओर आकर्षित किया, जिसमें कहा गया है: "उसने अपने हाथ से कुछ दस्तावेज लिखने के बारे में भी स्वीकार किया है, जो भी जाता है यह साबित करने के लिए कि वह दूसरों के साथ एक साजिश में शामिल था" यह तर्क देने के लिए कि यह आवेदक के खिलाफ लगाए गए आरोप से परे जा रहा था। साजिश का कोई आरोप नहीं था और यदि आई.ओ. द्वारा यह साबित कर दिया गया है। और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दंड के आदेश का आधार बन गया, ऐसा आदेश कानूनी रूप से टिकाऊ नहीं है। हमने पाया कि यह केवल निष्कर्षों के एक हिस्से पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास है। निष्कर्षों में यह भी शामिल है कि सी.ओ. कुछ को छोड़कर लगभग सभी अनियमितताओं को स्वीकार किया था और उन्होंने इन अनियमितताओं के लिए या तो जानकारी की कमी या काम की जल्दबाजी को जिम्मेदार ठहराया था। आवेदक ने निधि-उपलब्धता प्रमाणपत्र के बारे में कुछ अन्य बिलों में भी समर्थन करने की बात भी स्वीकार की थी। उन्होंने कुछ दस्तावेजों को अपनी लिखावट में लिखने की बात भी स्वीकार की है, जो उन्हें नहीं करना चाहिए था। जांच रिपोर्ट में 'षड्यंत्र' शब्द का उपयोग, मौलिक जांच करने और अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए पर्याप्त सावधानी बरतने में उनकी विफलता के तथ्य को दूर नहीं कर सकता है। वास्तव में, आरोप के अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि लापरवाही से अनुचित जल्दबाजी में फर्जी स्थानीय खरीद बिलों का भुगतान करके, उन्होंने सार्वजनिक धन के अन्य लोगों द्वारा 29.20 लाख रुपये के गबन की सुविधा प्रदान की। केवल उसे ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 'षड्यंत्र' शब्द के प्रयोग से संदर्भित किया गया है। गबन की सुविधा देने का आरोप पहले से ही था। उन्हें इस अनियमितता को होने देने का दोषी ठहराया गया है। हमारे पास अन्यथा मानने का कोई कारण नहीं है। आवश्यक प्रक्रिया का पालन करते हुए जांच की गई है और अनुशासनात्मक और अपीलीय अधिकारियों के आदेश तर्कसंगत हैं और हमारे द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

आवेदक की दलील के संबंध में कि उस पर लगाया गया जुर्माना आरोप की गंभीरता के अनुरूप नहीं है। यह इंगित करना है कि न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति में एक न्यायाधिकरण/अदालत, सामान्यतः सक्षम प्राधिकारी द्वारा तय किए गए दंड के साथ अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है। तथ्यान्वेषी प्राधिकारी होने के नाते अनुशासनात्मक/अपीलीय प्राधिकारियों के पास कदाचार की भयावहता या गंभीरता को ध्यान में रखते हुए उचित दंड लगाने की विशेष शक्ति है। हालाँकि, यदि इन अधिकारियों द्वारा दी गई सजा किसी न्यायाधिकरण या अदालत की अंतरात्मा को झकझोर देती है, तो उचित मामलों में, राहत दी जा सकती है या तो अनुशासनात्मक/अपीलीय अधिकारियों को लगाए गए दंड पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया जा सकता है, या असाधारण और दुर्लभ मामलों में उचित सजा दी जा सकती है। उसके समर्थन में ठोस कारणों के साथ लगाया गया। यह विचार बी.सी. में माननीय

उच्चतम न्यायालय द्वारा लिया गया है। चतुर्वेदी बनाम भारत संघ और अन्य 1995 (5) एसएलआर 778। मौजूदा मामला ऐसा नहीं है कि लगाए गए जुर्मनि में हमारे हस्तक्षेप की मांग की जाए।"

(7) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री दिनेश कुमार ने दो मुद्दे उठाकर ट्रिब्यूनल के आदेश पर हमला किया है। उनकी पहली दलील यह है कि सीसीएस नियमों के नियम 14(8)(ए) के अनुसार, याचिकाकर्ता एक कानूनी व्यवसायी की सहायता का हकदार था क्योंकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी विभागीय जांच करने में विशेषज्ञ था, हालांकि वह कानूनी नहीं था। व्यवसायी या योग्य कानून स्नातक। विद्वान वकील के अनुसार, नियम में प्रयुक्त अभिव्यक्ति यह है कि 'अनुशासनात्मक प्राधिकारी को मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक अपराधी अधिकारी को एक कानूनी व्यवसायी की सेवाएं लेने की अनुमति देनी चाहिए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह अनिवार्य था याचिकाकर्ता को एक कानूनी व्यवसायी की सेवाएं लेने की अनुमति देने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, विद्वान वकील ने जे.के. के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। अग्रवाल बनाम हरियाणा बीज विकास निगम लिमिटेड, (1) और तर्क दिया कि उस मामले में अभियोजन का प्रतिनिधित्व कानूनी रूप से प्रशिक्षित दिमाग द्वारा किया गया था, हालांकि वह एक कानूनी व्यवसायी नहीं था, फिर भी सुप्रीम कोर्ट ने इसमें एक वकील को नियुक्त करने की मंजूरी देने से इनकार कर दिया। जांच को विवेक का अनुचित प्रयोग बताया गया, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक न्याय विफल हो गया। उन्होंने अपने कथन के समर्थन में हमारा ध्यान विशेष रूप से पैराग्राफ 8,9 और 10 की ओर आकर्षित किया है। विद्वान वकील ने सी.एल. सुब्रमण्यम बनाम सीमा शुल्क कलेक्टर, कोचीन, (2) के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले पर भी भरोसा जताया है।

(8) विद्वान वकील द्वारा दी गई दूसरी दलील यह है कि आरोप पत्र में याचिकाकर्ता की भूमिका को श्री आर.के. के नाम के साथ शामिल किया गया है। कौल, जिन्होंने बिलों की जांच की और श्री के.एस. रस्तोगी, लेखा अधिकारी, जिन्होंने बिल पारित किए। विद्वान वकील के अनुसार शत्रुतापूर्ण भेदभाव है, यहां तक कि अन्य दो व्यक्तियों के खिलाफ अलग से की गई विभागीय जांच में या तो उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया है या उन्हें छोटी सजा देकर छोड़ दिया गया है। तर्क यह है कि इस तरह का शत्रुतापूर्ण भेदभाव अस्वीकार्य है क्योंकि बिलों के आधार पर भुगतान एक एकीकृत लेनदेन है और यह अलगाव के लिए खुला नहीं है। तर्क यह प्रतीत होता है कि सभी अधिकारी उन बिलों के प्रसंस्करण, जांच और पारित करने में ज़िम्मेदारी साझा करते हैं जो अंततः झूठे पाए गए और उन सभी की अपनी-अपनी भूमिका है। यह एकीकृत लेन-देन के कारण है कि साजिश का आरोप साबित हुआ है, लेकिन साथ ही एस/एसएच आर.के. कौल और के.एस. रस्तोगी जैसे अन्य लोग को छोड़ दिया गया है।

(9) विद्वान वकील द्वारा उठाया गया एक और तर्क यह है कि याचिकाकर्ता को अन्य लोगों के साथ साजिश रचने का दोषी पाया गया है, जो आरोप पत्र का हिस्सा भी नहीं था और इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है।

(10) उत्तरदाताओं के विद्वान वकील श्री संजय गोयल ने जोरदार तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को विभागीय जांच में पूरा अवसर दिया गया था और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है जिससे याचिकाकर्ता के अधिकारों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो। उन्होंने कहा है कि सीसीएस नियमों का ईमानदारी से पालन किया गया है और याचिकाकर्ता नियमों के किसी भी पेटेंट उल्लंघन को इंगित करने में विफल रहा है। उन्होंने 3 अप्रैल, 1988 (ए-एल) की जांच रिपोर्ट का हवाला दिया है जिसमें दिखाया गया है कि सभी प्रासंगिक दस्तावेज याचिकाकर्ता को प्रदान किए गए थे। उनकी इच्छानुसार उन्हें सभी सूचीबद्ध दस्तावेजों की प्रतियां भी प्रदान की गईं और उन्हें सूचीबद्ध और अतिरिक्त दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई। इसके बाद उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए

¹ 1991 (5) S.L.R. 78.

² (1972) S.C.C 542.

स्वीकारोक्ति के बयान का हवाला दिया, जिसमें माना गया था कि यह ज्ञान की कमी से उत्पन्न हुआ है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि काम की भीड़ के कारण कई अनियमितताओं से निपटा नहीं जा सका। याचिकाकर्ता ने दस्तावेजों पर अपनी लिखावट में लिखने की बात भी स्वीकार की है और एक बिल में कमी को दूसरे बिल से समायोजित करके कमी को कवर करने की प्रचलित प्रथा का हवाला दिया है। विद्वान वकील ने तब इस निष्कर्ष का उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं समर्थन किया गया है जो साबित करता है कि वह दोषी है और जानबूझकर इन अनियमितताओं को करने के लिए दोषी ठहराया गया है।

(11) एक कानूनी व्यवसायी की नियुक्ति के मुद्दे पर, उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि कानूनी व्यवसायी को सीसीएस नियमों के नियम 14(8)(ए) के तहत तभी नियुक्त किया जा सकता है जब प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कानून स्नातक हो। केवल यह तथ्य कि प्रस्तुतिकरण अधिकारी ने कुछ पूछताछ की थी, उसे कानूनी व्यवसायी नहीं बनाया जाएगा या उसे नियमों के चार-कोने के भीतर नहीं लाया जाएगा ताकि कानूनी व्यवसायी की सहायता की अनुमति दी जा सके। विद्वान वकील के अनुसार याचिकाकर्ता को यह दिखाना होगा कि कानूनी व्यवसायी की नियुक्ति न होने के कारण उसे कैसे पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा, भले ही उसका तर्क स्वीकार कर लिया जाए कि वह एक कानूनी व्यवसायी को नियुक्त करने का हकदार था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के संबंध में, विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि जे.के. के मामले में। अग्रवाल (सुप्रा) के अनुसार नियम पूरी तरह से अलग था क्योंकि उस मामले में पंजाब सिविल सेवा (दंड और अपील) नियम, 1952 का नियम 7 विचाराधीन था, जबकि वर्तमान मामले में सीसीएस नियम लागू हैं। उपरोक्त मुद्दे पर उनका अंतिम निवेदन यह है कि किसी भी मामले में याचिकाकर्ता किसी कानूनी व्यवसायी की सहायता का दावा नहीं कर सकता था, खासकर जब प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कानूनी व्यवसायी या कानून स्नातक नहीं था। भेदभाव के प्रश्न के संबंध में, श्री गोयल ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के साथ कोई भेदभाव नहीं किया गया है। विद्वान वकील के अनुसार, याचिकाकर्ता ने उन आरोपों को स्वीकार कर लिया है जिससे 29 लाख रु से अधिक भुगतान की सुविधा फर्जी लोकल परचेज के बदले मिली। यदि याचिकाकर्ता ने बिलों के प्रसंस्करण की प्रक्रिया का पालन किया होता तो इस तरह के धोखाधड़ी वाले लेनदेन से बचा जा सकता था और नकली बिलों का पता लगाया जा सकता था।

(12) प्रमुख दंड लगाने की प्रक्रिया:-

(एल)से(7) XXX XXX XXX

(8) (ए) सरकारी कर्मचारी अपनी ओर से मामला प्रस्तुत करने के लिए अपने मुख्यालय या उस स्थान पर जहां जांच हो रही है, किसी भी कार्यालय में तैनात किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता ले सकता है, लेकिन कानूनी कार्रवाई नहीं कर सकता है। इस उद्देश्य के लिए व्यवसायी, जब तक कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी एक कानूनी व्यवसायी न हो, या, अनुशासनात्मक प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अनुमति देता है:

बशर्ते कि सरकारी कर्मचारी किसी अन्य स्टेशन पर तैनात किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता ले सकता है, यदि जांच प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से अनुमति देता है।

नोट.- सरकारी सेवक किसी अन्य सरकारी सेवक की सहायता नहीं लेगा जिसके पास तीन अनुशासनात्मक मामले लंबित हैं जिनमें उसे सहायता देनी है।

(बी) XXX XXX XXX

(9) से (23) XXX XXX XXX" (हमारे द्वारा इटैलिक)

(13) असंशोधित नियम, जो सीसीएस नियमों का नियम 15(5) था और पूर्वोक्त नियम के समान था, सी.एल. में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य की व्याख्या के लिए आया था। सुब्रमण्यम का मामला (सुप्रा)। नियम के इटैलिक भाग की व्याख्या करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी एक प्रशिक्षित अभियोजक था, हालांकि कानूनी व्यवसायी/कानून स्नातक नहीं था और आवेदन पर गैर-विचारणीय था। ऐसी परिस्थितियों में किसी दोषी अधिकारी द्वारा वकील नियुक्त करना नियम का उल्लंघन माना गया। हालांकि, जब हम वर्तमान मामले के तथ्यों पर नियम लागू करते हैं, तो किसी भी प्राधिकारी द्वारा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता को एक प्रशिक्षित अभियोजक के खिलाफ खड़ा किया गया था। यह बताने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि वर्तमान मामले में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी इतना प्रशिक्षित व्यक्ति था कि केवल कानूनी रूप से प्रशिक्षित व्यवसायी ही उसके कानूनी कौशल का मुकाबला कर सकता था। इसके अलावा, तथ्य जटिल नहीं थे जिसके लिए किसी कानूनी व्यवसायी की नियुक्ति की आवश्यकता होती। इसलिए, हमें याचिकाकर्ता की ओर से दिए गए उपरोक्त तर्क में कोई तथ्य नहीं मिला।

(14) दो अन्य कारक हैं जिनका याचिका के समर्थन में आग्रह किया गया है, अर्थात्, याचिकाकर्ता के खिलाफ साजिश का कोई आरोप नहीं लगाया गया था लेकिन जांच अधिकारी ने इस आशय का निष्कर्ष दर्ज किया है। जांच रिपोर्ट का अंतिम भाग निष्कर्ष दिखाएगा जो इस प्रकार है:-

“...यह तथ्य कि उन्होंने खुद ये समर्थन किया है, यह साबित करता है कि वह (वह?) दोषी हैं और जानबूझकर इन अनियमितताओं को करने के लिए जिम्मेदार हैं। उन्होंने कुछ दस्तावेजों को अपने हाथ से लिखने की बात भी स्वीकार की है जिससे यह भी साबित होता है कि वह दूसरों के साथ मिलकर किसी साजिश में शामिल थे। इस हद तक मैं पीओ द्वारा अपने लिखित विवरण में दिए गए तर्कों से सहमत होने के लिए तैयार हूँ।

(15) यह तथ्यात्मक रूप से सही है कि जांच अधिकारी ने आरोपों के दायरे से बाहर यात्रा की है। यदि उपरोक्त प्रकृति का कोई निष्कर्ष नहीं निकला होता तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को सेवा से हटाने की अत्यधिक सजा नहीं दी होती।

(16) एक अन्य कारक जिसका तत्काल मामले पर प्रभाव पड़ेगा वह यह है कि श्री आर.के. कौल, जिन्होंने बिलों की जाँच की और श्री के.एस. बिल पारित करने वाले लेखा अधिकारी रस्तोगी के साथ समान व्यवहार नहीं किया गया, जबकि वे कहीं अधिक अनुभवी थे और अधिक जिम्मेदार पदों पर थे। उन्हें बिलों की जाँच करने और भुगतान की अंतिम मंजूरी देने का कर्तव्य सौंपा गया था। इसलिए, उपरोक्त अधिकारियों के साथ साजिश की थ्योरी को तथ्यों पर आधारित नहीं किया जा सकता है। किसी भी मामले में, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निष्कासन की अत्यधिक सजा अनुचित होगी।

(17) यह सच हो सकता है कि जब तक नियमों के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन न हो, सजा की मात्रा में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त प्रस्ताव के लिए मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया जा सकता है मिथियेश सिंह बनाम भारत संघ⁽³⁾ बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ,⁽⁴⁾ और ओम कुमार बनाम भारत संघ,⁽⁵⁾। हालांकि, उपरोक्त कानूनी सिद्धांत एक और योग्यता के अधीन है जो 'वेडनसबरी' अवधारणा से निकलती है। 'वेडनसबरी' अवधारणा से उभरे सिद्धांत को रामेश्वर प्रसाद (VI) बनाम भारत संघ,⁽⁶⁾ के मामले में सात-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले द्वारा निम्नानुसार स्पष्ट किया गया है: -

³ (2003)3 S.C.C. 309

4. (1995)6 S.C.C. 749

5. (2001)2 S.C.C. 386

6. 2006)2 S.C.C. 1

“242. वेडनसबरी [एसोसिएटेड प्रोविशियल पिक्चर हाउसेस लिमिटेड वी. वेडनसबरी कॉरपोरेशन, (1948) 1 केबी 223] सिद्धांत को अक्सर गलत समझा जाता है कि कोई भी प्रशासनिक निर्णय जिसे न्यायालय द्वारा अनुचित माना जाता है, उसे रद्द कर दिया जाना चाहिए। वेडनसबरी सिद्धांत की सही समझ यह है कि एक निर्णय वेडनसबरी अर्थ में अनुचित कहा जाएगा यदि (i) यह पूरी तरह से अप्रासंगिक सामग्री या पूरी तरह से अप्रासंगिक विचार पर आधारित है, (ii) इसने एक बहुत ही प्रासंगिक सामग्री को नजरअंदाज कर दिया है जिसे इसे करना चाहिए विचार कर लिया है, या (iii) यह इतना बेतुका है कि कोई भी समझदार व्यक्ति इस तक पहुंच ही नहीं सका।”

(18) एक बार कानून में उपरोक्त स्थिति को स्वीकार कर लिया जाता है तो सजा की मात्रा पर हस्तक्षेप पूरी तरह से समर्थित और जरूरी है। याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाये गये आरोपों में गबन, गबन के संबंध में कोई आरोप नहीं है। आरोप जल्दबाजी में बिल पास करने से जुड़े हैं। याचिकाकर्ता ने माना है कि काम की भीड़ के कारण ऐसी चूक हुई है।

(19) उपरोक्त चर्चा की अगली कड़ी में, ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय, दिनांक 12 अगस्त, 2002, और हटाने का आदेश, दिनांक 19 अप्रैल, 1999 (ए-2), को एतद्वारा रद्द किया जाता है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को दी गई सजा पर फिर से विचार करने और उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है। बिलों की जाँच करने वाले श्री आर.के. कौल और श्री के.एस. रस्तोगी लेखा अधिकारी, जिन्होंने बिल पारित किया, जैसे अन्य लोगों को दी गई सजा को भी ध्यान में रखा जाएगा, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भुगतान के लिए बिल पारित करना एक अभिन्न लेनदेन का गठन करता है, जिसे वर्तमान मामले में तीन हाथों से निपटाया गया है। इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर आवश्यक कार्रवाई की जाएगी।

(20) रिट याचिका का निपटारा उपरोक्त शर्तों के अनुसार किया जाता है।

भावना गेरा

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

कुरूक्षेत्र, हरियाणा